THE TIMES OF INDIA

Date:02-07-22

Defects, Defection

Keep the Tenth Schedule but clear the muddle

TOI Editorials

The Shiv Sena rebellion has put the anti-defection law back in focus. The Constitution's Tenth Schedule, inserted in 1985 and amended in 2003, hasn't really killed the market for legislature members. It's just made the reserve price higher. Some argue the law must be made even tougher. Others say the law kills intra-party debate. Some MPs, in fact, bemoan the inability to have principled dissent from the party line because of the disqualification threat. They cite problematic disqualification criteria like voting against a party whip. What should be done? Keep the law but clear the muddle.

First, the law's provisions give no time frame for taking decisions and are generally badly drafted. Second, speakers and governors aren't neutral umpires. Third, courts have also muddied waters with differing interpretations. In Maharashtra, 16 random Sena rebel MLAs received disqualification notices though the Shinde faction had crossed the two-third threshold to evade disqualification. This reveals weaknesses in the anti-defection law. It was a clear attempt to break a "legitimate" rebellion by reducing the rebel contingent's numbers. Sometimes punishment is quick, as in 2019, when the Karnataka speaker disqualified 17 Congress-JD(S) MLAs despite their resigning house membership. He also overreached by barring them for the assembly's tenure, which the Constitution doesn't prescribe. At other times, proceedings have been inexplicably slow, for example, against AIADMK rebels in Tamil Nadu and Congress defectors in Manipur and Madhya Pradesh.

Then there are confusions created by the likes of the 2016 SC judgment that restored a Congress government in Arunachal Pradesh, though rebels who had crossed over to People's Party of Arunachal under Kalikho Pul met the two-third threshold. Sometimes verdicts are delayed, defanging the law. Tenth Schedule raised the bar on defections. But Parliament, presiding officers and courts must create a more elegant version of it.

Date:02-07-22

Rules & Reality

Why good laws aren't enough by themselves

TOI Editorials

As reproductive rights were set back by half a century in the US, there have been understandable references to India's liberal abortion laws. The Medical Termination of Pregnancy Act in the 1970s passed without politics and was amended for the better in 2021. But it's the practice and add-ons to the law that are the problem.

A UN Population Fund report estimates that around eight women in India die every day because of unsafe abortions, and between 2007-11, 67% of abortions were classified as unsafe. It is among the top three causes of maternal death. Unsafe abortions are far higher among poor and marginalised populations. As for the law, the original MTP Act did not require a board of medical practitioners. They evolved out of judicial interventions – even though the Supreme Court has noted that it deprives women of reproductive freedom, which is a dimension of the right to personal liberty.

This medical board is infeasible in rural areas, given the lack of gynaecologists or radiologists and indeed, most healthcare professionals. A recent study found an 84. 2% shortfall of OB-gyns in rural north India, and a 57. 2% shortfall in south India. All of this becomes more of a systemic hurdle given the still-present stigma around reproductive issues, deterring women from seeking safe abortions. India's good law needs to lose some paraphernalia and needs to be backed up by health infrastructure and commitment.

दैनिक भास्कर

Date:02-07-22

क्या यह दलबदल कानून की समीक्षा का भी समय?

संपादकीय

अगर कोई कानून ऐसा हो जिसकी व्याख्या के लिए हर बार कोर्ट जाना पड़े और हर बार कोर्ट नई व्याख्या दे तो शायद कानून ही कमजोर-अस्पष्ट है। दल-बदल विरोधी कानून सन् 1985 में पारित हुआ, लेकिन जब अनैतिक दल-बदल का सिलसिला नहीं रुका तो सन् 2003 में 91वें संविधान संशोधन के जरिए इसे और सख्त बनाया गया। लेकिन वही ढाक के तीन पात। अब कोर्ट के सन् 2016 के संवैधानिक पीठ का फैसला देखें जिसने इस कानून को लगभग प्रभावहीन बना दिया। नबाम रेबिया केस में संविधान पीठ ने स्पष्ट कहा कि अगर किसी स्पीकर के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लंबित है तो उसके लिए सदस्य की योग्यता पर फैसला लेना संवैधानिक रूप से असंभव होगा। उसके बाद जितने भी प्रमुख दल-बदल के मामले हुए उनमें पहले विद्रोहियों ने स्पीकर के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव दिया ताकि वह आगे की करवाई में सक्षम न रहे। रेबिया फैसले का एक और पहलू था अनुच्छेद 179 की व्याख्या में बताना कि अविश्वास प्रस्ताव देने के

दिन/समय पर सदन में सभी सदस्यों की संख्या के आधार पर प्रस्ताव पर मतदान। यानी उस दिन के बाद से स्पीकर को सदन की संख्या बदलने का अधिकार नहीं होगा। यानी वह इस कानून के आधार पर किसी भी सदस्य को निकाल नहीं सकेगा।

Date:02-07-22

सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियां

संपादकीय

देश के विभिन्न शहरों में अपने खिलाफ दर्ज तमाम एफआइआर को दिल्ली स्थानांतरित करने की मांग के साथ सुप्रीम कोर्ट पहुंचीं भाजपा की निलंबित प्रवक्ता नुपुर शर्मा को न्यायाधीशों की जैसी कठोर टिप्पणियों से दो-चार होना पड़ा, उन्हें लेकर सवाल खड़े होने स्वाभाविक हैं। चूंकि सुप्रीम कोर्ट ने नुपुर शर्मा को राहत देने के बजाय उन्हें हाई कोर्ट जाने को कहा, इसलिए उनके सामने अपनी याचिका वापस लेने के अलावा और कोई उपाय नहीं था। पता नहीं हाई कोर्ट से उन्हें राहत मिलेगी या नहीं, लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने उन्हें जिस तरह उदयपुर में कन्हैया लाल की बर्बर हत्या के लिए भी जिम्मेदार ठहरा दिया, उससे उन तत्वों के हौसले बुलंद हो सकते हैं, जो सिर तन से जुदा जैसे खौफनाक नारे के साथ उन्हें मारने की धमकियां देने में लगे हुए हैं। इसके चलते उन्हें सुरक्षा देनी पड़ी है। इससे इन्कार नहीं कि ज्ञानवापी प्रकरण में टीवी चैनल पर बहस के समय नुपुर शर्मा ने तल्ख लहजे में जो टिप्पणी की, उसने लोगों को उद्वेलित किया, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि भावनाएं आहत होने के नाम पर लोग हिंसा और यहां तक कि गला काट कर हत्या करने लग जाएं।

सुप्रीम कोर्ट ने नुपुर शर्मा को फटकार लगाते हुए जैसी टिप्पणियां कीं, उनसे उनके विरोध में सड़कों पर उतरकर उत्पात मचाने वालों को यह संदेश जा सकता है कि उन्होंने कुछ गलत नहीं किया। आखिर सुप्रीम कोर्ट इसकी अनदेखी कैसे कर सकता है कि नुपुर शर्मा के माफी मांगने और उन्हें भाजपा से निलंबित किए जाने के बाद भी देश के कई शहरों में उनके खिलाफ किस तरह उग्र और हिंसक प्रदर्शन हुए? यह सही है कि किसी याचिका की सुनवाई के दौरान न्यायाधीशों की ओर से की जाने वाली कई टिप्पणियां फैसले का हिस्सा नहीं होतीं, लेकिन उनका असर तो पड़ता ही है। अच्छा होता कि सुप्रीम कोर्ट नुपुर शर्मा को फटकार लगाने और दिल्ली पुलिस से यह प्रश्न करने तक सीमित रहता कि आखिर उसने निलंबित भाजपा नेता के खिलाफ एफआइआर दर्ज करने के बाद क्या किया? यदि किसी के खिलाफ एफआइआर दर्ज हुई है तो लोगों को यह पता चलना ही चाहिए कि उस पर आगे क्या कार्रवाई हुई? आशा की जाती है कि दिल्ली पुलिस इस प्रश्न के उत्तर के साथ सामने आएगी, लेकिन इसी के साथ यह भी अपेक्षित है कि सुप्रीम कोर्ट अपनी टिप्पणियों पर विचार करे। यह अपेक्षा इसलिए, क्योंकि उसकी कुछ टिप्पणियां उन लोगों को बल प्रदान करने वाली भी हैं, जो भारत में ईशनिंदा का वैसा ही कठोर कानून बनाने की मांग कर रहे हैं, जैसे कई इस्लामी देशों में बने हुए हैं।

जनसत्ता

Date:02-07-22

बुजुर्ग आबादी की बढ़ती मुश्किलें

ज्योति सिडाना

इस हकीकत से इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक परिवार की नींव उसकी बुजुर्ग पीढ़ी ही होती है। विशेष रूप से भारतीय समाज में तो यह माना जाता रहा है कि जिस घर में बड़े-बुजुर्गों का आशीर्वाद होता है, वहां हमेशा समृद्धि का वास होता है। पर क्या आज भी लोग ऐसा ही सोचते या मानते हैं? संभवत: नहीं। सच्चाई तो यह है कि बयासी फीसद बुजुर्ग अपने परिवार के साथ रहते तो हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश अपने बेटे-बहुओं से खुद को पीड़ित महसूस करते हैं। ऐसी घटनाएं आए दिन देखने-सुनने को मिलती भी रहती हैं। घर वालों के दुर्व्यवहार के कारण तीन चौथाई से ज्यादा बुजुर्ग परिवार में रहने के बावजूद अकेलेपन का शिकार हैं।

देश में बुजुर्गों की स्थिति को लेकर समय-समय पर सर्वे और अध्ययन होते रहे हैं। इनसे यही सामने आया है कि देश में करीब साठ फीसद बुजर्गों को लगता है कि समाज में उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। हालांकि केवल दस फीसद ही इस बात को स्वीकार करते हैं कि वे भी दुर्व्यवहार के शिकार हैं। इसका कारण संभवत: परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़ा होता है। उन्हें लगता है कि लोग उनके परिवार के बारे में क्या सोचेंगे। पिछले दिनों एक सर्वे में सामने आया कि छत्तीस फीसद बुजुर्ग अपने रिश्तेदारों, पैंतीस फीसद बच्चों और इक्कीस फीसद बहू से परेशान हैं। वहीं सत्तावन फीसद अनादर, अड़तीस फीसद मौखिक दुर्व्यवहार, तैंतीस फीसद उपेक्षा, चौबीस फीसद आर्थिक शोषण और तेरह फीसद बुजुर्गों ने शारीरिक शोषण झेलने की बात कही।

इन आंकड़ों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि ऐसी घटनाओं के लिए बहुत हद तक परिवारों की संस्कृति जिम्मेदार है। प्रारंभ से ही भारत में माता-पिता अपनी सारी जमा पूंजी अपने बच्चों के पालन-पोषण और भविष्य बनाने में लगा देते हैं, इस उम्मीद के साथ कि बुढ़ापे में बच्चे उनका सहारा बनेंगे। लेकिन जब बच्चे कमाने लगते हैं तो वे अपने माता-पिता को छोड़ कर अपने देश, राज्य या शहर से बाहर जाकर अपनी दुनिया बसा लेते हैं। दरअसल, आज की पीढ़ी के लिए परिवार का मतलब पति-पत्नी और उनके बच्चे हैं। उन्हें अपने माता-पिता या भाई-बहनों से कोई सरोकार नहीं होता। या फिर मासिक खर्चा भेज कर अपने कर्तव्य को पूरा हुआ मान लेते हैं। जाहिर है, आज के डिजिटल युग में भावनाओं का महत्त्व समाप्त हो चुका है।

समाज की इस गंभीर समस्या के प्रति लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए समय-समय पर फिल्में और धारावाहिक बनते रहे हैं। फिल्म बागबान सभी को याद होगी कि किस तरह इस फिल्म में बच्चे अपने माता-पिता को कुछ-कुछ समय के लिए बारी-बारी से अपने पास रखने को तैयार होते हैं, ताकि किसी एक पर उनका भार न पड़े। वे उनके साथ न केवल दुर्व्यवहार करते, बल्कि उनकी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को फिजूलखर्ची समझ कर उनकी उपेक्षा करते। लेकिन विरोधाभास यह है कि यही पीढ़ी जब इन धारावाहिकों या फिल्मों को देखती है तो उनकी आंखें नम हो जाती हैं, लेकिन सिनेमाहाल से बाहर आने के बाद वह भी वैसा ही व्यवहार करने में पीछे नहीं रहते। फिल्म क्या संदेश दे रही है, यह भूल जाते हैं। सोशल मीडिया पर ऐसे तमाम संदेश देखने को मिल जाते हैं जिनसे पता चलता है कि आज की पीढ़ी बुजुर्गों के साथ रिश्तों को लेकर कितनी कदर करती है।

वृद्धावस्था उम्र का ऐसा पड़ाव होता है जब इंसान का मन और शरीर दोनों शिथिल होने लगते हैं। ऐसे में उन्हें सबसे ज्यादा जरूरत अपनों के सहारे की होती है, विशेष रूप से भावनात्मक सहारे की। ऐसे में बुजुर्गों में तनाव, निराशा और अकेलापन जैसे लक्षण उभरना सामान्य बात है। अनेक शोधों में यह सामने आया कि अकेलेपन के कारण बुजुर्गों में याददाश्त की समस्या उत्पन्न हो जाती है। चिकित्सकों के अनुसार इस समस्या से ग्रस्त मरीज शारीरिक रूप से नहीं, बल्कि मानसिक रूप से ज्यादा कमजोर हो जाता है। यहां तक कि दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिए भी उसे दूसरों की मदद लेनी पड़ती है।

यह कम बड़ी त्रासद स्थिति नहीं है कि जब बुजुर्गों को परिवार और बच्चों की सबसे ज्यादा जरूरत होती है तब वे उनके पास नहीं होते। अनेक घटनाएं सुनने और देखने में आती हैं कि घर में बुजुर्ग व्यक्ति या दंपति मृत मिले अथवा घरेलू नौकर ने लूट की नीयत से उनकी हत्या कर दी.. आदि-आदि। बहुत से बुजुर्ग ऐसे भी हैं जिनके आगे-पीछे कोई नहीं है। ऐसे में ये बुजुर्ग घर में अकेले रहने के दौरान या अकेले बाहर निकलते वक्त अपराधियों के लिए आसान निशाना होते हैं। बुजुर्गों के साथ तेजी से बढ़ रही अपराध की घटनाएं इसी ओर संकेत करती हैं।

आज के उपभोक्तावादी समाज में रिश्ते, भावनाएं, प्रतिबद्धता और त्याग जैसे भाव अब अर्थहीन हो चुके हैं। इनके स्थान पर भौतिकतावादी वस्तुएं जैसे गेजेट, ब्रांडेड सामान, सोशल मीडिया पर दिखावा युवा पीढ़ी पर इतना हावी हो गया है कि परिवार की बुजुर्ग पीढ़ी उनके लिए एक तरह से निरर्थक हो चली है। आज के डिजिटल समाज में अधिकांश काम आनलाइन होने लगे हैं। लेकिन यह भी सच है कि आज भी अधिकांश बुजुर्ग डिजिटल तकनीक या विभिन्न आनलाइन सुविधाओं का उपभोग आसानी से नहीं कर पाते हैं। सर्वे के अनुसार इकहत्तर फीसद बुजुर्गों के पास स्मार्टफोन नहीं है और जो लोग स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं, वे भी इसके लाभों से पूरी तरह परिचित नहीं हैं। एक सर्वे से पता चला है कि उनचास फीसद बुजुर्ग मोबाइल या स्मार्टफोन का उपयोग मुख्य रूप से काल करने, तीस फीसद सोशल मीडिया और सत्रह फीसद बैंकिंग लेनदेन के लिए करते हैं।

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि समाज में पीढ़ी अंतराल तो सदियों से चला आ रहा है। दो पीढ़ियों की सोच और व्यवहार में अंतर सामान्य बात है, लेकिन एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी को हाशिए पर खड़ा कर देना, उन्हें अर्थहीन मानना या खुद पर बोझ मानना समाज के समक्ष अनेक तरह के जोखिम उत्पन्न कर रहा है। चालीस फीसद बुजुर्गों ने यह स्वीकार किया कि वे स्वयं को आर्थिक रूप से सुरक्षित महसूस नहीं करते। परंपरागत परिवारों में माता-पिता हमेशा से ही अपनी सारी बचत और जमा पूंजी अपने बच्चों पर खर्च करते आए हैं। उन्होंने कभी यह सोचा ही नहीं होगा कि बच्चे उनके साथ उपेक्षित व्यवहार करेंगे।

इसलिए परिवार के इस आधुनिक चरित्र को बदलने की आवश्यकता है। आज जिस तरह से समाज में सामूहिकता की भावना की समाप्त होती जा रही है, उससे परिवार की अवधारणा ही खत्म होने लगी है। ऐसे ही हालात रहे तो वह समय दूर नहीं जब परिवार संस्था ही समाप्ति के कगार पर खड़ी होगी। सवाल है कि परिवार, समाज या सामाजिक संगठन के विघटन को कैसे रोका जा सकता है? परिवार प्रणाली में होने वाले इस विघटन को रोकने के लिए जरूरी है कि परिवार में लोकतांत्रिक मूल्यों को शामिल किया जाए। तकनीक और सोशल मीडिया पर वक्त कम देकर परिवार के सदस्यों को महत्त्व देना सीखना होगा। भौतिक वस्तुओं की तुलना में मानवीय संबंधों को अधिक महत्त्व देना होगा। कहते हैं कि अगर परिवार मजबूत होता है तो समाज मजबूत होता है और समाज मजबूत होता है तो राज्य भी मजबूत होता है। और राज्य मजबूत होता है तो अर्थव्यवस्था, राजनीति, संस्कृति सभी व्यवस्थाएं मजबूत होती चली जाती हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date:02-07-22

आइए, बचाएं सामूहिक विवेक

कृष्ण प्रताप सिंह

निस्संदेह, एक दूजे के खिलाफ गले फाड़ती और नेजे चमकाती रहने वाली धार्मिक व सांप्रदायिक कट्टरता अपने मूल रूप में एक दूजे की पूरक और अपने अस्तित्व के लिए एक दूजे पर निर्भर होती हैं। न सिर्फ हमारे देश बल्कि दुनिया के अतीत में भी ऐसी कई मिसालें हैं, जब परस्पर उलझी हुई दो कट्टरता में से किसी एक का उन्मूलन कर दिया गया तो उसके खिलाफ रोज-रोज युद्धघोष करती रहने वाली दूसरी कट्टरता भी खुद को नहीं ही बचा पाई। इसीलिए कट्टरता आपस में भिड़ंत का कितना भी दिखावा करें, सर्वाधिक एकजुट मनुष्य के उस विवेक पर हमले में ही होती हैं, जो इस समझदारी के विकास के लिए सक्रिय रहता है कि वैर से वैर कभी शांत नहीं होता।

वैर से वैर को शांत करने की कोशिश अंततः घी से आग बुझाने की कोशिश जैसी सिद्ध होती है और वैर को सचमुच शांत करना हो तो अवैर की राह अपनानी पड़ती है और अपने द्वेषपूर्ण चित्त को मैत्रीपूर्ण चित्त से प्रतिस्थापित करना पड़ता है। राजस्थान के उदयपुर शहर में भड़काऊ सोशल मीडिया पोस्टों की श्रृंखला से पैदा हुए एक विवाद में पैगम्बर मोहम्मद का अपमान करने वाली बहुचर्चित नूपुर शर्मा के समर्थन का बदला लेने के नाम पर कथित तौर पर 'दावत-ए-इस्लामी' से जुड़े दो नरपिशाचों द्वारा कन्हैयालाल नामक दर्जी से जो दरिंदगी की गई है और जिसने देश के शांति और सौमनस्य के लिए गम्भीर अंदेशे पैदा करते हुए सद्भाव के सारे पैरोकारों को हिलाकर रख दिया है, उसे कुछ इसी तरह समझा जा सकता है। हां, यह समझना तब तक किसी काम का नहीं, जब तक यह भी न समझ लिया जाए कि कन्हैयालाल की जान लेने वाले सिरफिरों के पीछे, जैसा कि राजस्थान के मुख्यमंत्री अशोक गहलौत अंदेशा जता रहे हैं, कोई विदेशी साजिश हो या देशी, साजिशियों को कन्हैयालाल की जान से ज्यादा इस देश के सामूहिक विवेक से खेलना अभीष्ट है। क्योंकि उसके सामूहिक विवेक को सामूहिक अविवेक में बदले बगैर तो वे कितनी भी बर्बरता बरत लें, वह सब पाने से रहे, जो हर कीमत पर हासिल करना चाहते हैं। अच्छी बात है कि अभी तक इस सामूहिक विवेक ने एक भी ऐसा

संकेत नहीं दिया है जिससे लगे कि वह किंचित भी उद्वेलित या आक्रांत हो रहा है। अभी तक तो उस पर कोई खरोंच भी नजर नहीं आई है। इसे इस रूप में देख सकते हैं कि कुछ नाशुक्रों को छोड़ दें तो सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों के नेताओं ने सारे मतभेद भुलाकर कन्हैयालाल के हत्यारों की कड़ी निंदा, उसे कड़ी से कड़ी सजा दिलाने की मांगें और उनके मंसूबे नाकाम करने के लिए हर तरह की नफरत को हराने व भाईचारे को उसकी भेंट चढ़ने से बचाने की अपीलें की हैं। यहां कहना होगा कि राज्य की पुलिस ने इस बर्बरता से जुडे भड़काऊ सोशल मीडिया पोस्टों के विवाद को शुरू में ही गम्भीरता से लिया होता तो शायद विवाद इस त्रासद अंजाम तक पहुंच ही नहीं पाता, लेकिन शुक्र है कि बाद में उसने भी दोनों हत्यारोपियों को तत्परतापूर्वक राजसमन्द से गिरफ्तार कर लिया। इस कांड़ की जांच इसलिए भी जरूरी है कि मुख्यमंत्री अशोक गहलोत को अंदेशा है कि उदयपुर में जो कुछ हुआ, वह किसी बड़े राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय लिंक के बिना नहीं हो सकता। इस सिलसिले में एक और अच्छी बात यह हुई है कि जिन अल्पसंख्यकों के धर्म के नाम पर उदयपुर में यह बर्बरता बरती गई है, उन्होंने खुद को उससे अलग करने में देर नहीं लगाई है। बरेली में मुस्लिम धर्मगुरु मौलाना तौकीर रजा ने तो यह कहकर लोगों को चकित कर दिया है कि चूंकि उनके धर्म के नाम पर यह जुर्म किया गया है, इसलिए वे समझते हैं कि इस गुनाह में उनका भी हिस्सा है और उन्हें भी सजा मिलनी चाहिए। उन्होंने हत्यारोपियों के कृत्य को गैरइस्लामी बताते हुए उन पर सख्त-से-सख्त कार्रवाई की मांग की है। इतना ही नहीं, उन्हें मुस्लिम समाज का सबसे बड़ा दुश्मन बताया और कहा है कि इस्लाम ऐसे अपराधों की इजाजत नहीं देता।

न्यायशास्त्र का नियम है कि एक अपराध को दूसरे अपराध का औचित्य सिद्ध करने के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। फिर इस सबसे इतर इस वक्त हर देशवासी का कर्तव्य है कि वह देश के सामूहिक विवेक को कलंकित करने वाला कोई भी कृत्य न करे। इसी तरह देश की सरकार का कर्तव्य है कि वह देर से ही सही, उन महानुभावों की सुद्धि जगाने का अभियान शुरू करे, जो वैर को वैर से शांत करने के बेहिस प्रयासों के तहत धर्म संसदों को भी अधर्म की संसद बनाए दे रहे हैं और अल्पसंख्यकों के नरसंहार की अपीलों तक के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। महाभारत की लड़ाई में हारने वालों को तो सर्वस्व गंवाना ही पड़ा था, जीतने वालों को भी लाशों के अंबार पर बैठे थोथे विजय दर्प के अलावा कुछ हासिल नहीं हो पाया था। किसी शायर ने क्या खूब कहा हैः दुश्मनी का सफर एक कदम दो कदम, तुम भी थक जाओगे, हम भी थक जाएंगे।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:02-07-22

फटकार में सलाह

संपादकीय

नूपुर शर्मा पर देश के सर्वोच्च न्यायालय की दोटूक राय उल्लेखनीय और अनुकरणीय है। इस राय या फटकार की रोशनी में ही आगे की कार्यवाही सरकारों को करनी चाहिए। किसी भी विवादित या हिंसा के लिए उकसाने वाली टिप्पणी पर तत्काल कार्रवाई से ही गलतबयानी के मजबूत होते चलन पर लगाम लगेगी। सर्वोच्च न्यायालय ने साफ इशारा किया है

कि नूपुर को टीवी पर देश से सार्वजनिक तौर पर माफी मांगनी चाहिए और उनके बयान के कारण ही देश में आग लगी है। इतना ही नहीं, अदालत ने इशारों में ही यह भी मान लिया कि उदयपुर की निर्मम घटना के लिए भी नूपुर का बयान जिम्मेदार है। यह भी सवाल खड़ा हो गया कि आखिर उनके खिलाफ इतनी शिकायतों के बावजूद कार्रवाई क्यों नहीं हुई। उनके खिलाफ देश भर में मामले दर्ज हो रहे हैं, तो उनकी कोशिश है कि सारे मामले एक ही जगह कर दिए जाएं, ताकि एक ही जगह मुकदमा चले, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने उनकी याचिका को एक तरह से वापस कर दिया, इससे न्यायालय की नाराजगी के स्तर को समझा जा सकता है। अब नूपुर को उच्च न्यायालय में जाना पड़ेगा। शायद वहां उन्हें राहत मिल जाए, लेकिन उनकी परेशानियां अभी कम नहीं होने वाली।

सर्वोच्च न्यायालय की मंशा शायद यह है कि आरोपी पूरी स्पष्टता के साथ बिना शर्त माफी मांगें। देश से माफी मांगें, क्योंकि उनके बयान से देश का भी अपमान हुआ है और न केवल लोगों को परेशानी हुई है, बल्कि एक जान भी चली गई है। अब कानून व्यवस्था संभालने वालों को भी सावधान हो जाना चाहिए। माहौल सुधारने के लिए सभी को सक्रिय हो जाना चाहिए। अगर ऐसा लगता है कि इसमें जांच की जरूरत है, अगर बहस की तह में जाना है, अगर यह देखना है कि किसने किसको उकसाया, किसने ऐसी दुखद चर्चा शुरू की, तो संबंधित एजेंसियों को त्वरित ढंग से काम करना होगा। सांप्रदायिकता को कभी तार्किक नहीं ठहराया जा सकता और देर सबेर हमें देखना ही होगा कि कौन सांप्रदायिकता फैला रहा है, कौन समाज में कट्टरता या हिंसा को बढ़ावा दे रहा है।

हालांकि, विधि-प्रशासन के स्तर पर भी सावधानी से आगे बढ़ना होगा। ध्यान रहे, सर्वोच्च न्यायालय की फटकार के बाद न्यायालय में एक याचिका दायर हुई है, जिसमें न्यायालय में सुनवाई के दौरान नूपुर शर्मा के लिए की गई टिप्पणी को वापस लेने की मांग की गई है। बताया गया है कि नूपुर को जान का खतरा है। इसमें कोई शक नहीं, इस खतरे की पड़ताल होनी चाहिए, नूपुर की सुरक्षा सुनिश्चित होनी चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि कानून तेजी से अपना काम करे, न्याय होता दिखे, ताकि कोई कानून में हाथ में लेने की हिमाकत न करे। क्या सरकारों की ओर से भी लोगों के बीच यह संदेश नहीं जाना चाहिए कि कानून हाथ में लेने वालों की खैर नहीं? लोग अगर कानून हाथ में ले रहे हैं, तो इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष संदेश यही है कि उनका विश्वास कम हो रहा है। अभी भी ज्यादातर लोग ऐसे हैं, जिन्हें देश और उसकी व्यवस्था पर सोलह आना विश्वास है, लेकिन जिनका विश्वास हिल गया है या जो कानून से खिलवाड़ करना चाहते हैं, उन तक कानून का हाथ पहुंचना चाहिए। देश में पर्याप्त कानून हैं, जिनसे सांप्रदायिकता या सांप्रदायिक टिप्पणियों को रोका जा सकता है। ऐसी टिप्पणियों से देश आगे नहीं बढ़ता, हमें देश को आगे बढ़ाने वाली बहसों की जरूरत है, इसके लिए सबको मिलकर अनुकूल माहौल बनाना होगा।